Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2016 = 6.177, www.srjis.com
UGC Approved Sr. No.49366, MAR–APR, 2018, VOL- 5/44

रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन

डॉ निशा मलिक

एसोसिएट प्रोफेसर जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

nisha.malik01@yahoo.in

Abstract

मध्यकालीन साहित्य अपनी सांस्कृतिक साहित्यिक–प्रवृत्तियों के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास में विशिष्ट पहचान रखता है। मध्यकाल का पूर्वार्द्ध सूर, तुलसी, जायसी, जैसे भक्त कवियों का काल था जिनकी आध्यात्मिक संगीतात्मक कविता ने जन जन को ईश्वराधना के रस में सराबोर कर दिया। ईश्वर में तल्लीन ये कवि स्वान्तः सुखाय काव्य रचना में प्रवृत्त हुए, फलतः इनका काव्य जीवन व समाज के उदात्त स्वरूप को प्रकट करता है। दूसरी ओर मध्यकाल का उत्तरार्ध रीतिकाव्य, कविता की अद्भुत कारीगरी का युग रहा जो सामाजिक जीवन के प्रति निरपेक्ष बना रहा, अर्थात् उसमें जीवन का अभाव दिखलाई देता है, अतः विद्वत् समाज उसके प्रति कुछ उदासीन व पूर्वाग्रह से युक्त रहा है। अतः रीतिकाल के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता निरंतर बनी रही है।

बीज शब्द– *आध्यात्मिक, संगीतात्मक, सराबोर, शब्दार्थ, युगीन, संदर्भ, सापेक्ष, विद्वत् समाज, स्वान्तः सुखाय ।*

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

मूल आलेख –

एक श्रेष्ठ अथवा आदर्श कविता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पारदर्शी हो, दूर के दर्शन करवाए, उसे पढ़ने के उपरांत मानव मन अपने भीतर एक हलचल, एक नवसंचार को अनुभूत कर सके, वह पाठक को केवल कविता में बंधे शब्दार्थों तक ही सीमित न रहने दे वरन् कहीं दूर की यात्राओं पर ले जाए, उसमें युगीन ऊष्मा व नमी व्याप्त हो। यद्यपि कविता वर्तमान में निर्मित होती है किंतु वह अपनी ध्वन्यात्मकता में अतीत व भविष्य को झंकृत करने में समर्थ होती है। महाकवि तुलसी के शब्दों में–

"कीरति भनिति भूति भलि सोई।

सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥"

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कहगए हैं –

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

अर्थात कवि कर्म युग सापेक्ष है। एक श्रेष्ठ कवि सदैव अपने समय को साथ लेकर काव्य सृजन करता है। उसके चित्र चिरंतन व शाश्वत होते हैं। प्रत्येक युग अपने युगीन संदर्भो के अनुसार उसकी व्याख्या करता है। मनुष्य मात्र को प्रेरित करने वाला साहित्य– वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, कालिदास, कबीर, जायसी, तुलसी, सूर, भारतेन्दु, पंत, निराला, प्रसाद, महादेवी द्वारा रचित साहित्य मनुष्य की चेतना को जागृत करने वाला वह साहित्य है जो अपने समय के संघर्ष से उपजा है। किंतु रीतिकालीन साहित्य

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

के संबंध में यह उतना बड़ा सत्य नहीं है कि वह अपने समय व समाज की भावनाओं को प्रतिबिंबित करने की सामर्थ्य रखता है अथवा न पाठक को कहीं दूर यात्रों पर ले जाने में तत्पर दिखलाई देता है। महाकवि दिनकर के शब्दों में "रीतिकाल की सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि उससे यह मालूम ही नहीं होता कि उस युग के साहित्यकार समाज की समस्याओं से परिचित थे अथवा उन्हें इस बात का ज्ञान था कि समाज की भी समस्याएं हुआ करती हैं। ..... जिसका उत्तर खोजने को वे संघर्ष में पड़ते अथवा किसी प्रकार की द्विधा और द्वंद का सामना करते। उनका ध्यान जीवन पर नहीं कला पर है, काव्यशास्त्र की गुत्थियों पर है और उन्हीं को सुलझाने के लिए उक्तियों और चित्रों का निर्माण करके वे निश्चिंत हो जाते हैं।" संस्कृत काव्य आचार्यों के काव्यशास्त्रीय अध्ययन की ओर ये कवि अधिक आकृष्ट हुए, उसी अनुपात में जीवन की समस्याओं से रीतिकवि दूर होते गए, शुद्ध कला रचनाओं के प्रति इनका रुझान रहा ।

हिंदी का रीतिकालीन साहित्य उसका उत्तर मध्ययुगीन साहित्य है जिसकी समय सीमा सामान्य रूप से संवत् 1700 से संवत् 1900 विक्रमी तक मानी जाती है। यह वह समय था जब रीतियुगीन साहित्य को श्रेष्ठ साहित्य कहा जाता था। साहित्यिक सुरुचि संपन्न काव्य रसिकों के लिए यह विशुद्ध काव्यधारा है जो किसी भी प्रकार की वैचारिकता अथवा सांप्रदायिकता को बढ़ावा नहीं देती। कवियों की विशिष्ट स्वच्छ काव्य प्रतिभा का मनोरम प्रकाशन रीतिकाव्य की उपलब्धि है। अतः लगभग दो ढाई सौ वर्षो तक रीति काव्य को पर्याप्त महत्व व सम्मान मिलता रहा। न केवल राज्य दरबारों में, वरन् जन सामान्य की सौंदर्य चेतना व कलात्मकता को विकसित करने में भी रीति काव्य का सहयोग दिखलाई देता है। स्वतंत्रता से पूर्व गांवों– कस्बों में रीतिकालीन कवि व कविता पर्याप्त प्रचलित रही है। देव, मतिराम, पद्माकर के छंद सहृदय समाज को रस विभोर कर उसका मनोरंजन करने के लिए सशक्त माध्यम थे।

आधुनिक युग के आगमन के उपरांत रीति युगीन साहित्य पर विद्वत् समाज ने अनेक प्रकार के दोषारोपण करते हुए इसे नितांत पतनोन्मुख काव्य कहा। स्वयं आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे आचार्य रीतिकालीन कविता के प्रशंसक भी रहे किंतु उनके द्वारा की गई कुछ प्रतिकूल टिप्पणियों के परिणाम स्वरूप उनके परवर्ती आलोचकों को रीति काव्य अपने युग जीवन से कटा हुआ घोर श्रृंगारिक व अश्लील दिखलाई देता है। कुछ विद्वान् रीति युगीन कवियों को 'सामंत' कहकर भी संबोधित करते हैं किंतु यहां इस प्रकार की टिप्पणी आपत्तिजनक है जो कवि आजीविका अर्जन करने हेतु विवशतापूर्वक राजाश्रय स्वीकार कर कविता बना रहे थे वे समाज से निरपेक्ष हो सकते हैं परंतु सामंत नहीं। यह अवश्य सत्य है कि कवि कलाकार राजाओं की राजसभा के शोभा वर्धक उपकरण थे और उनका मनोरंजन भी करते थे। राज दरबारों से ही कवियों की आजीविका चलती थी। फलतः उनमें भी राज कर्मचारियों में बढ़ती विलासिता पनपने लगी जिसके चलते वे रुढ़िपालन करते हुए भारतीय जीवन व संस्कृति से कटे हुए प्रतीत होते हैं।

यद्यपि इन कवियों ने आश्रयदाताओं की प्रशंसा की, परंतु यह उस युग विशेष में कला और काव्य की संरक्षा हेतु आवश्यक भी थी। यह वह समय था जबकि कविता, संगीत, चित्र आदि को राजाश्रय का आश्रय लेकर ही विकसित किया जा सकता था। अतः आश्रयदाताओं को प्रशंसा से संतुष्ट करते हुए ही ये

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

कविगण साहित्यिक व कलात्मक निधियों का परिपोषण करने में समर्थ हो पाए। युगीन आवश्यकता के कारण ही आश्रयदाताओं की प्रशंसा इनकी विवशता थी, इन्होंने साहित्य की अविरल धारा को बाधित नहीं होने दिया। इस दृष्टि से ये कलाकार प्रशंसनीय हैं। अपने स्वाभिमान की उन्होंने सदैव रक्षा की है। ऐसा कहा गया है कि कवि ठाकुर ने अपने आश्रयदाता हिम्मत बहादुर द्वारा कहे गए कुछ आपत्तिजनक शब्दों के विरोध में तलवार निकाल ली थी–

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के,
दान जुध्द जुरिबे मैं नैकु जे न मुरके।
'ठाकुर' कहत हम बैरी बेवकूफन के,
जालिम दमाद हैं अदानियाँ ससुर के।

डॉ भागीरथ मिश्र इस संदर्भ में कहते हैं–

"उन्होंने अपने व्यवहार और कृतित्व से कवि और कविता दोनों के ही गौरव को उच्चता प्रदान की। केशव, चिंतामणि, भूषण, बिहारी, देवदास, पद्माकर, आदि ऐसे ही कवि थे जिनको अपने दरबार में लेने के लिए अनेक राजा और शासक उत्सुक तथा लालायित रहते थे। ऐसे कवियों के द्वारा जो कुछ प्रशंसात्मक उक्तियों मिलती हैं वे गुणों और कार्यों की सराहना मात्र हैं।"

रीतिबध्द कवियों में देव कभी किसी राज्यसभा में टिक कर नहीं बैठे, फलतः दरबारी प्रवृत्ति उनमें कम दिखलाई देती है। लोकजीवन से समप्रक्त होने के कारण ही वे सामाजिक विषमता को अपने पदों में उतार पाए। राज दरबार के घृणित व चाटुकारिता भरे वातावरण को चित्रित करते हुए वे कहते हैं–

साहिब अंध, मुसाहिब मूक, सभा बहिरी, रंग रीझ कौ माच्यौ।
भूल्यो तहाँ भटक्यौ भट औघट बूड़िबे को कोउ कर्म न बाच्यौ।
भेष न सूझयौ, कह्यौ समुझायौ न, बतायो सुन्यो न, कहा रुचि राच्चौ।
'देव' तहाँ निबरे नट की, बिगरी मति को सिगरी निसि नाच्यौ ।।

लेकिन यह भी सत्य है कि अधिकांश रीतिकवियों ने अपनी काव्य प्रतिभा का प्रकाशन श्रृंगार वर्णन और राजाओं की स्तुति में ही किया है। दरबारी दायरे से बाहर रीतिकाव्य का विकास कम ही दिखलाई देता है। यही कारण है कि रीतिकवियों में सूर, तुलसी, जायसी जैसी व्यापक गहराई नहीं मिलती जो समय सापेक्ष है। रीतिकवियों की युग निरपेक्षता को रेखांकित करते हुए त्रिलोचन शास्त्री कहते हैं– " वास्तव में रीति युग ऐसा युग नहीं था कि जनता इतने सुकून में हो कि उसके विलास और आनंद के दिन आ गए हो। आम जनता के लिए तो यह युग आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और वैयक्तिक दृष्टि से घोर विषमता, त्रास, पराभव और घुटन का युग था।" किंतु आम जनता की समस्याओं से दूर इन कवियों पर दरबारी संस्कृति अधिक प्रभावी थी। दरबारों में चमक दमक व चमत्कार प्रदर्शन विशेष रूप से दिखलाई देता है। एक कवि दूसरे कवि से स्वयं को विशिष्ट बतलाने के लिए चमत्कारों का आश्रय लेता है, बस यहीं अनुभूति की हत्या हो जाती है। इन कवियों ने अलंकार प्रवृत्ति पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है। डॉ नगेंद्र

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

कहते हैं– "रीतिकाव्य एक तरह से अलंकारों का समृद्ध कोष है, इसमें सुरुचि और अरुचि का अनमेल मिश्रण है।" ये कवि काव्य रचना नहीं वरन् अलंकार निरूपण को लक्ष्य मानते हैं। स्वयं केशव 'कवि प्रिया' में कहते हैं–

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई, कविता वनिता मित।"

वस्तुतः रीतिकाव्य में शब्द वैभव से युक्त वर्णन– भंगिमाएं, उक्ति वैचित्र्य, कौशल मूलक उपमाएं, लाक्षणिक प्रयोग, अर्थ चमत्कार आदि की इतनी प्रचुरता है कि कहीं कहीं काव्य में कृत्रिमता आ गई है। डॉक्टर जगदीश गुप्त भी कहते हैं–"रीतिकाल की कविता भीतर से खोखली और बाहर से बजते हुए शब्दों की ध्वनि से कहीं कहीं इतनी भरी हुई मिलती है कि बहुधा रसिक काव्य– मर्मज्ञों को उससे वितृष्णा होने लगती है।" तथापि कारीगरी की अद्‌भुत छटा से भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

रूढ़िवादिता रीति युगीन साहित्य का एक अन्य दुर्बल पक्ष है। प्रायः कविगण एक ही प्रकार के विषयों व प्रसंगों पर रचनाएं करते रहे। यद्यपि विविधता मिलती है परंतु परिपाटी बद्धता का आग्रह भी मिलता है। वस्तुतः युगीन कवि शुद्ध काव्य सृजन का मार्ग निकालना चाहते रहे हैं इस प्रक्रिया के तहत कुछ कवि काव्य का नवीन मार्ग निकालते हैं परंतु शेष कवि उन्हीं का अनुसरण करते हुए रीतिबद्धता को बढ़ावा देते हैं।

रीतिकालीन कवियों की प्रायः निंदा होती रही है। वस्तुतः रीति कवियों की निंदा का प्रबल कारण यह समाज है जिसने उनकी इस परिपाटी बद्ध अभिरूचि का निर्माण किया क्योंकि कविता अपने समय– समाज की ही उपज है और वह सहृदय समाज की अभिरुचि से भी प्रभाव ग्रहण करती हैं। कविता सुनने – पढ़ने वालों की मनोदशा व प्रवृत्ति के अनुसार ही कवि कविता निर्मित करता है। स्पष्ट है कि जिन काव्यगुणों को रीति कवियों ने काव्य में स्थान दिया वहीं जन समुदाय में सराहनीय रहे होंगें। तत्कालीन समय में रचित प्रेमकाव्य अथवा श्रृंगारिक काव्य पर भी अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है। यद्यपि यह सर्वथा अनुचित आरोप है। श्री त्रिलोचन शास्त्री के शब्दों में "श्रृंगार के संयोगपक्ष के वर्णन को अश्लील मानना अस्वस्थ मानसिकता है, क्योंकि श्रृंगार के सर्वांगीण और चारु विवरण संस्कृत के महाकवियों ने भी दिए हैं। लोगों मे नैतिकता के स्थूल रुप का आग्रह इतना बढ़ गया है कि कहीं भी नर–नारी जीवन का संक्षिप्त विवरण दिखाई दिया नहीं की अश्लील अश्लील की गुहार लगाने लगे।" इसी संदर्भ में उल्लेखनीय है कि भक्तियुग में सूरदास, नंददास, विद्यापति, जायसी आदि के अनेक वर्णन रीतिकालीन कवियों से भी अधिक अश्लील कहे जा सकते हैं। आधुनिक युग की रचनाओं में भी इस प्रकार के वर्णन मिल जाएंगे किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि यह आवश्यक नहीं कि एक ऐसे विशेष समय में किए गए वर्णन उस समय अश्लील नहीं थे पर आज वह अश्लीलता के अंतर्गत आते हैं ऐसी स्थिति में रीतिकालीन कवि द्वारा किए गए नखशिख सौंदर्य चित्रण में यदि कुछ वर्णन अश्लीलता की सीमा में आ भी जाते हैं तो उसके आधार पर समस्त काव्य को उपेक्षित अथवा लांछित करना उचित नहीं है।

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि नारी सौंदर्य के लिए विभिन्न उपमान जुटाते इन कवियों ने नारी का सामाजिक दायित्व अथवा कार्य संबंधी उत्तरदायित्व कहीं नहीं दिखलाया है। प्रत्येक नायिका किसी ना किसी नायक के प्रति ही उन्मुख दिखलाई देती है। स्त्रियां दूती, कूटनी, अभिसारिका रूप में ही चित्रित हैं जिससे उस समाज के स्वरूप के संबंध में प्रश्न अवश्य उठता है। अतः श्रृंगारी कवियों की रचनाएं अपने आप में पूर्ण हैं। सौंदर्य संपन्न हैं किंतु इनका आनन्द व्यक्तिगत रूप से लिया जा सकता है, सामाजिक रूप से नहीं।

श्रृंगार से इतर वीरता, भक्ति व नीतिकाव्य का प्रणयन भी इस युग में हुआ। यद्यपि श्रृंगार प्रधान काव्य सृजन इस युग का प्रमुख काव्य क्षेत्र रहा किंतु कहीं न कहीं समाज को प्रेरित करने वाला साहित्य भी यहां उपलब्ध होता है, अतः रीतिकाल पर पुनर्विचार के लिए पुराने पूर्वाग्रहों से मुक्ति भी आवश्यक है। रसवाद, रीतिवाद, अलंकारवाद की प्रमुखता के साथ साथ समय व समाज सापेक्षता भी यहां दृष्टिगत होती है। कवि केशवदास का काव्य है– 'जहांगीर जसचंद्रिका' और 'वीर सिंह देव चरित'। यह दोनों काव्य मुगलकालीन इतिहास से जुड़े हैं। यह भारतीय समाज के सामंतवाद का समय है और सामंतवाद भोग विलास व श्रृंगारिकता की प्रवृति का पक्षधर है, इसी पर रीतिकालीन काव्य निर्मित हुआ है। केशव की रचना 'वीर सिंह देव चरित्र' में राजनीति की विस्तृत चर्चा है जिससे केशवदास के राजनीतिक कवि होने का पता चलता है। शिवाजी के पराक्रमशाली वीर चरित्र को कविता का विषय बनाने वाले कवि भूषण भी रीतिकालीन कवियों से भिन्न राष्ट्रीय– सामाजिक महत्व रखते हैं। वे अन्य कवियों की भांति आश्रयदाताओं की मिथ्या प्रशंसा न करते हुए अपने चरित्रनायक की महिमा का स्पष्ट रूप से गुणगान करते हैं–

भूखन यों कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी
पुण्य चरित्र सिवा सरजा सर न्हाय पवित्र भई पुनिबानी।"

चरितनायक की महिमा ने कवि के काव्य को भी महिमामय बना दिया। इस संदर्भ में भूषण का 'छत्रसाल दशक' और लालकवि का 'छत्र प्रकाश' भी उल्लेखनीय हैं। बिहारी जैसे कवियों में भी 'नहिं पराग नहीं मधुर मधु' जैसी पंक्तियाँ भी राजाओं के मार्ग को प्रशस्त करती दिखलाई देती हैं। रीतिकालीन कवि पद्माकर, घासीराम व दीनदयाल गिरी जैसे कवि भी अंग्रेजी राज के फैलते साम्राज्य व स्वाधीनता के प्रति चिंता व्यक्त करते दिखलाई देते हैं –

" पराधीनता दुख महा, सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विसय कनक पींजरा दीन।।"

रीतिकालीन कवियों का दृष्टिकोण भक्ति कालीन कवियों की भांति आध्यात्मिक नहीं लौकिक था वे जीवन संबंधित आशाओं, आकांक्षाओं, लालसाओं, रूप, सौंदर्य, प्रेम, विलास आदि मानवीय प्रवृत्तियों को सहज रूप में वर्णित कर रहे थे। अपनी रचनाओं को प्रभावशाली बनाने के निमित्त वह अतिश्योक्ति से काम लेते हैं। ऐसा नहीं है कि लोक सम्पृक्त ज्ञान के विविध विषयों का उनके साहित्य में अभाव है। अनेकशः राजनीति,

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

ज्योतिष, पशुचिकित्सा, कामशास्त्र, मैत्री, नीति, संगीत, भोजन शास्त्र, उद्यान शास्त्र जैसे विषयों पर प्रकाश डालने वाली रचनाएं भी हमें रीतिसाहित्य में प्राप्त होती है।

रीतिकालीन कवियों की भावुकता, सहृदयता व प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं – "रीति ग्रंथों की परंपरा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरुपता, जीवन की भिन्न भिन्न चिन्त्य बातों तथा जगत् के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पाई। वागधारा बंधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह गए।" इस संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कविता, कविता की जिन विशेषताओं पर बल दे रही थी संभवतः युगीन पाठकों की दृष्टि में वही विशेषताएं काव्य के सबसे बड़े मूल्य रहे हों। दिनकर जी के शब्द इस संदर्भ में उल्लेखनीय है– "शब्द की सजावट, यमक और श्लेष का चमत्कार, दूर की कौड़ी लगाने वाली निगूढ़ कल्पनाएं, अतिश्योक्ति और हास्यास्पद प्रशस्तियां, नारी के एक–एक अंग को अनेक उपमाओं के दर्पणों में अलग अलग दिखाने का आग्रह और कवित्त एवं सवैये में पहली तीन पंक्तियों में जैसी तैसी तैयारी और उक्ति की सारी बेधकता को समेटकर चौथी पंक्ति में केंद्रित कर देने का प्रयत्न, ये बातें रीतिकाल के पाठकों को बहुत पसंद रही होगी, अन्यथा हम उस काल के कवियों में कविता को इन गुणों से सजाने का इतना यथेष्ट प्रयास नहीं देखते।"

परंतु आज का सहृदय पाठक कविता की साज–सज्जा नहीं वरन् उसमें निहित बेचैनी, अकुलाहट व भावुकता का स्पर्श चाहता है। यहां देखें तो बोधा व घनानंद के अतिरिक्त किसी भी कवि का अपना निजी प्रेम नहीं था। वस्तुतः वे कविताओं का प्रणयन काव्यशास्त्रीय उदाहरणों की प्रस्तुति हेतु करते हैं। आत्माभिव्यक्ति के लिए नहीं, इसीलिए उनकी कविताएं निस्तेज हैं। यही बात उनकी श्रृंगारिकता के लिए कहीं जा सकती है, उसमें भी वही कृत्रिमता है। नारी के प्रति जो प्रेम, जो वासना चंडीदास अथवा विद्यापति में मिलती है वह इनमें अनुपस्थित है। वे अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए राधा कृष्ण अथवा आश्रयदाताओं का सहारा लेते हैं। रीतिकालीन कवि ने अपनी सारी शक्ति उन उपकरणों की खोज में लगा दी है जिससे कविता सजाई जा सके जबकि पाठक वर्ग अनुभूति की सच्चाई को पाना चाहता है भले ही कविता गद्य के निकट पहुंच जाए। डॉ रामविलास शर्मा कहते हैं कि "रीतिकालीन कवियों का आदर्श यह रहा है कि जो कुछ वे कहें उसमें चमत्कार अवश्य हो जिससे सुनने वाले वाह–वाह कर उठें। जो बात कही जाए वह चाहे महत्वपूर्ण न हो, कहने का ढंग अनोखा होना चाहिए। इस रीतिकालीन आदर्श को साहित्य के लिए चिरन्तन मान लेना साहित्य के विकास में कांटे बिछाना है ।"

रीतिकालीन काव्य के संदर्भ में प्रायः प्रश्न उठता है कि इसे पाठ्यक्रम का हिस्सा क्यों बनाया जाए? क्या रीति कविता पाठकों को पढ़नी चाहिए? इस संदर्भ में पूर्व ग्रहों से मुक्त होने की आवश्यकता है। यह भी सत्य है कि आज के पाठक की रूचि में परिवर्तन हुआ है तथापि रीतिकवि भी पाठक वर्ग के लिए कविता ही लिख रहे थे, इतिहास अथवा दर्शन की बात नहीं कर रहे थे। आज का पाठक भले ही कविता के अनावश्यक उपकरणों को महत्व न दें परंतु उनके भीतर से उभरती कविताई को तो कदाचित वो अवश्य

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

समझना चाहेगा। रीतियुग को समझने के जिज्ञासु के लिए भी यह कविता अवश्य ही पठनीय है, रही पाठ्यक्रम में उसे स्थान देने की बात तो तय है कि हिंदी साहित्य के समूचे इतिहास के बीच से संवत् 1700 से संवत् 1900 तक के साहित्य को निकालकर आगे बढ़ना सरल व उचित नहीं। कविता के रसिकों को इस युग की कविता से भी 'रसानुभूति प्राप्त होती है। घनानंद, बोधा, ठाकुर, रसखान जैसे कवियों की सच्ची अनुभूतियों, सारल्य व चित्रों की सुस्पष्टता आदि ऐसे गुण है जो आज के पाठक को भी अभिभूत करते हैं।

रीतिकालीन कविता में कितने भी दोष निकाले जाएं किंतु यह सत्य है कि ये कवि सच्चे कलाकार हैं, भले ही इन्होंने कविता में जीवन को छोड़ दिया, परंतु कविता को सज्जित करने में ये इतने लायक निकले कि समूचे साहित्य में अदभुत कारीगरी की साफ–सुथरी तस्वीर इन्हीं के यहां मिलती हैं। चित्रात्मकता की दृष्टि से यह हिंदी साहित्य का सर्वाधिक सफल काल कहां जायेगा। चित्रकारी के ऐसे सजीव चित्र बिहारी आदि में मिलते हैं की बड़ी–बड़ी कविताएं उनके समक्ष निस्तेज लगती है। "बिहारी के दोहों में न तो कोई बड़ी अनुभूति है, न कोई ऊंची बात सिर्फ लड़कियों की कुछ अदाएं है, मगर कवि ने उन्हें इस ढंग से चित्रित कर दिया है कि आज तक रसिकों का मन कचोट खा कर रह जाता है। जो लोग कविता में सिर्फ ऊंची अनुभूति और ज्ञान की बड़ी–बड़ी बातों की तलाश में रहते हैं बिहारी की कविताओं में उन्हें अपने लिए चुनौती मौजूद मिलती है।

"बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाई,
सौंह करै, भौंहनि हंसै, देन कहै, नटि जाई।"
'कंजनयनि मंजन किते, बैठे व्यौरति बार,
कच अंगुरिन बिच दीठि दै, चितवति नंददुकार। '

बिहारी ही नहीं रीतिकाल के प्रत्येक कवि में यह विलक्षण कला विद्यमान है। पद्माकर की कलम से विचार कम चित्र अधिक उठते थे –

"हेरि हरे मुसकाय रही,
अंचरा मुख दै वृषभानुकिसोरी।
.....
.....
नैन नचाई कहयौ मुसुक्याई।
लला फिर आर्यों खेलन होरी।"

रीतिकालीन कवियों को शारीरिक सौंदर्य का चितेरा कहां जाता है किंतु मतिराम जैसे कवियों में मानसिक सौंदर्य के भी दर्शन होते हैं 'वट– सावित्री– पूजन' के समय नायिका का तन भले ही बट के इर्द –गिर्द धूम रहा है किंतु उसका मन प्रियतम के चारों और ही घूम रहा है–

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

"जमुना के तट बंसी वट के निकट
नंदलाल पै सकोचन ते चाह्यो ना परत है।
तन तो पिया को बर भांवरें भरत
मन सांवरे बदन पर भांवरें भरत है।"

यही नहीं छायावादी कवि में जिस मार्मिक अनुभूति और दर्द भरी बेचैनी का स्वीकार मिलता है, उसके बीज रीतिकाल में ही मिलने लगे थे। बिहारी का दोहा इस संदर्भ में उद्धरणीय है।

इन दुखिया अँखियान को सुख सिरजोई नाहि,
देखें बने न देखियो, बिन देखे अकुलाहिं।

घनानंद की 'प्रेम की पीर' छायावाद के निकट पढ़ती हैं। घनानंद में हमें आने वाली कविता (छायावाद) के स्वर स्पष्ट सुनाई देते हैं, विरह घनानंद की अमूल्य निधि है। आलम, बोधा, ठाकुर, रसखान भी घनानंद के निकटवर्ती हैं। बोधा एक भावुक प्रेमी कवि हैं–

"कबहूं मिलिबो, कबहूं मिलिबो
यह धीरज ही में धरैबो करै।"

अतएव रीतिकालीन कविता को लेकर एक विशिष्ट सोच समझ बनाकर विचार करना उचित नहीं है। यद्यपि इस कविता के पीछे मध्यकालीन पतन शीलता, सामंती समाज की संस्कृति का पिछड़ापन काम कर रहा था। कवियों ने जो कुछ भी लिखा उनके पीछे चतुर्दिक परिवेश काम कर रहा था क्योंकि कोई भी कविता सीधे आसमान से उतर कर नहीं आती। सृजन के बीज यहीं आसपास के समाज से ही एकत्रित किए जाते हैं। परिवर्तित समाज की रुचि के अनुकूल उसमें बहुत कुछ त्याज्य है तो बहुत कुछ स्वीकार्य भी। किसी भी काल विशेष को पतन शील प्रवृत्ति का नाम देकर हिंदी साहित्य के सच्चे इतिहास की रूपरेखा स्पष्ट करना कठिन कार्य होगा। अंत में प्रो विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में रीतिकालीन काव्य के संबंध में एक न्यायोचित मंतव्य देना आवश्यक हो जाता है – "रीतिकालीन काव्य में प्रेम और श्रृंगार की बात बहुत मिलती है। यह समझना बहुत बड़ा दंभ है कि प्रेम और श्रृंगार काल केवल सामंतो और विलासियों के जीवन में होता है। गरीब आदमी भी प्रेम करते हैं और हमेशा से करते रहे हैं। रीतिकालीन प्रेमकाव्य में साधारण से साधारण गृहस्थों की गाथाएं भी हैं। वहां अरहर के खेत, खलिहान, बाग– बगीचे जैसे अनेक संकेत स्थल हैं। रीतिकालीन प्रेमधारा केवल दरबारों की प्रेमगाथा नहीं है, वह प्रकृति और अपभ्रंश की गाथाओं की परंपरा है।"

संदर्भ ग्रंथ सूची

हिंदी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, 2007 नई दिल्ली।
रीतिकालीन भारतीय समाज– शशिप्रभा प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1979 ई०।
मध्यकाल – एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक धनंजय कुमार दुबे, नटराज प्रकाशन दिल्ली ,
ISBN- 978–93–86113–24–5
रीतिकाव्य नवनीत, संपादक डॉ भागीरथ मिश्र, ग्रंथम प्रकाशन, कानपुर।

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

दिनकर रचनावली (खंड–7) संपादक नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2011 ।
हिंदी कविता की प्रगतिशील भूमिका, प्रभाकर श्रोषिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज
ISBN- 81–214– 0527– 0

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies